Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, COSMOS Impact Factor: 5.647, Volume 10, No. 02, April, 2020, pp. 149-152

बुद्धकालीन शिक्षण व्यवस्था

डॉ॰ सतीश कुमार*

परिचय

प्रायः ईश पूर्व चौथी शती में जब बौद्धो मठों में सन्यस्त जीवन बिताने का निश्चय किया तब यह प्रश्न उठा कि जो नया दीक्षित हैं, और जिसने मठ में प्रवेश किया है, उसे क्या शिक्षण दिया जाए। इसे "निस्यपद्धति" कहा जाता है। जिसका अर्थ है शिक्षण पर निर्भर रहना। यह निष्यकाल शिक्षण का काल था, और पूर्ण भिक्षु बनने के पहले के स्थिति का द्योत्तक था।

ब्राह्यणग्रंथों में इसे "ब्राह्यचर्य" कहा गया है। यह एक ऐसी पद्धति थी जिसमें साम्प्रदायिक मठ–जीवन में बुद्धपूर्व गुरू, गृह पद्धति का अनुकरण था। विद्धान योग्य व्यक्ति जो मठों में प्रवेश करता वह पाँच वर्ष तक निस्सय में रहता था, जबकी दुसरा कोई व्यक्ति आजीवन निस्सय में रहता था।, जब दीक्षित को आध्यात्मिक निर्देशन मिलता था, जिसे "उजज्झाय" कहा जाता है। और एक व्यवस्थित पाठ पढ़ाने वाले को "आचार्य कहा जाता है था। जो कम से कम 10 वर्षो तक भिक्षु रहा हो।

शिक्षा के उपकरण

जिस बौद्ध काल– खण्ड की हम चर्चा कर रहे हैं उसमें आधुनिक अर्थ में 'साक्षरता' नहीं हुआ करती थी। और समग्र अध्ययन मौखिक परम्परा, श्रवण और स्मरण सुनने और रहने की विधि पर आधृत थी।

विनयपिटक में भिक्षु को कौन–कौन सी वस्तुएं अपने साथ रखनी चाहिए, इनका जो उल्लेख है, उसमें किसी हस्तलिखित ग्रंथ या लेखन सामग्री का उल्लेख नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि तब लिखने पढ़ने की पद्धति नहीं थी। वस्तुतः पुस्तक लेखन पद्धति, राजकीय कार्यो के लिए छोटे ताम्रपत्र या धातुपत्र के लेखों यदि छोड़ बहुत बाद में व्यवहार में लायी गयी। सम्भवतः इसा पूर्व प्रथम शताब्दी से पहले नहीं। बौद्ध भिक्षुओं की शिक्षा अनौपचारिक पद्धति पर आचार्यो के द्वारा दिया जाता था।

मथुरा के प्राच्य वस्तु संग्रहालय में बहुत घिसी हुई मूर्ति मिली है, जो इस बात की ओर ईशारा करती है कि बौद्ध भिक्षु खुले आकाश के नीचे बैठकर विद्याध्ययन कर रहे हैं। और गुरू उनके सामने बैठे हैं। जिसके बाएँ हाथ में माथे के उपर तिरछे उठाये छाता है।

आचार्य की शिक्षाएँ भी उस समय के भिक्षु जीवन के लिए आवश्यक ज्ञान से सम्बनधित रही होगी। विनय और गाथाएँ जातक प्रार्थनाएँ, मूल तत्व और दर्शन–यह शिक्षा वार–वार मूल पाठ के सामुहिक रूप से उच्चारण या "संगीत" एक साथ गाया जाता था। इसका उद्वेश्य था मूल पाठ को कंठस्थ करना।

धम्म और विनय

बौद्ध भिक्षुओं में जो नवदीक्षित होते थे उन्हें धम्म, और विनय का पाठ पढ़ाया जाता था। ये दो प्रधान अंग थे। बौद्ध धर्म में एक छोटा सा प्रसंग आता है जिससे यह पता चलता है कि आशिक शिक्षा कितनी निष्ठा और ईमानदारी से ग्रहण किया जाता था।

* एम॰ए॰, पीएच॰ डी॰ (इतिहास), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार।

परावरण

विहारों में एक गंभीर विधि थी जो बौद्ध भिक्षुओं के लिए बड़ा कष्टदायी था जो वस्सावास के अन्त में होती थी। जो एक बार में यह विधि पूरा नहीं हो सकता था। सुत्तनतिकों ने सुत्तन्त का पाठ पढ़ा था। विनयघरों में विनय पर शास्तार्थ किया था। धम्म कथिकों ने धम्म की चर्चा किया था।

"धम्मकथिक"

धम्मकथिक शब्द दो अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। पहला "धम्म" अपने व्यापक अर्थ में आया है जैसे– "धर्मचक्रपर्वतन" में। और दूसरा अधिक विशिष्ट अर्थ में। कथा शब्द धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर विशेष व्याख्यान या वाद विवाद के अर्थ में प्रयुक्त होता था। यथा कथावस्तु अधिधम्मक था आदि।

विद्यापीठों के रूप में विहार

- **बौद्धिक विनय** – बौद्धिक विनय के अन्तर्गत भिक्षुओं की मानसिक प्रबुद्धता के उपर विशेष प्रकाश डाला गया है। ज्यों–ज्यों मठ और विहार आध्यात्मिक संस्कृति के रक्षागृह न रहकर, विद्या का केन्द्र बनते गए।
- **फाहियान** – फाहियान चीन का यात्री था, उसने यह वर्णन किया है मठ और विहार में भिक्षुओं ने अनेक ग्रंथों, की रचना की जिससे विहारों के स्वरूप में नया परिवर्तन आया।
- **शास्त्रार्थ पद्धति–** शास्त्रार्थ पद्धति के द्वारा भिक्षु अपनी योग्यता सिद्ध करते थे, यह एक प्राचीनतम एवं परम्परागत मार्ग या शास्त्रार्थ, पण्डित– समाएँ विचित्र पंथों के बीच में शास्त्रीय पद्धति उत्कृष्ट पद्धति थी। प्राचीन और नवीन वैदिक काल में, अशोक के समय , तथा हर्षकाल में इस पद्धति का वर्णन मिलता है।
- **उदाहरणार्थ–** "सप्तदशभूमिशास्त्र" नामक ग्रंथ के पंद्रहवें खण्ड में मैत्रेय सात अध्यायों में वाद–विवाद का वर्णन करते हैं, यह बौद्ध संस्कृति ग्रंथ लगभग 400 ई0 पू0 का होगा।
- **विद्यापीठ–** दुरगामी सांस्कृतिक परिणाम यह हुआ कि पुराने मठ– विहार नष्ट होकर धीरे–धीरे विद्यापीठ में परिवर्तित होने लगे। भिक्षुओं के अध्ययन न केवल बौद्ध धर्म ग्रंथो के पठन पाठन से पूर्ण नहीं होता था। बल्कि अन्य दर्शन की पद्धतियों जैसे–रवेती वास्तु विद्या भी सिखाये जाते थे। ऐसी विद्या विहारों के निर्माण और निर्वहन के लिए आवश्यक थी, ई0 पूर्व प्रथम शती के बाद जन पुस्तक–लेखन पद्धति प्रचलित हुई, तो ग्रंथों का संग्रह पर बल दिया गया।
- **जीवन पद्धति–** परन्तु ये विद्यापीठ अपना सन्यस्त रूप में हमेशा, अपना छाप बनाये रखा। वहाँ रहने वाले विद्यार्थियों को मठ और विहारों में विरक्त जीवन बिताने के सभी नियमों का पालन करना पड़ता था।
- **व्यवस्था और अनुदान–** मृद्यविगन एवं जनसाधारण एक आध्यात्मिक कर्तव्य के नाते इन मठों को अनुदान देते थे। बौद्ध धर्म का विकास चाहने वाले राजा किसी एक ग्राम या ग्राम–संघ का सम्पूर्ण कर अनुदान के रूप में समीप के विहार को दे दिया करते थे। विहार की भूमि और भवन किसी व्यापारिक या व्यवसायिक साधारण समूह के दान रूप में होती थी, इस प्रकार कई विहार और भिक्षुगृह समृद्ध बनते गये। और उनके सुन्दर भवन और सभागृह बने। उनमें सर्वसाधारण सम्पन्न धान्य भण्डार और स्थावर सम्पत्ति भी संगृहित की गयी।

  कतिपय मठों का एक प्राचीर के बीच संघ बन गया उनकी एक संस्था हो गयी।

चीनी यात्रियों का साक्ष्य

- फाहियान अपने वर्णन में लिखा है "राजा और वैश्यों के अग्रणी भिक्षुओं के लिए जो विहार खेत, बगीचे, फलों के उद्यान पशु चारागाह इत्यादि का समीपस्थ जनता के सहयोग से दान में देते। राजा की ओर से विहारों में दान पत्र दिये जाते थे। वे धातु की पट्टियों पर खोदे जाते थे। और एक राजा से दुसरे राजा को वंश परम्परा में मिलते थे।

- **कई मठ–** सातवीं शती के अंत होते–होते– इतने समृद्ध हो चुके थे कि चीनी यात्री इत्सिंग ने उसकी घोर निन्दा किया। वह लिखता है कि "यह मठ के लिए उचित नहीं है कि वहाँ आवश्यकता से अधिक द्रव्य हो। अन्य भण्डारों में लगा हुआ उनका अन्न हो।

विद्याकेन्द्र तक्षशिला

सातवीं शताब्दी ईशा पूर्व में तक्षशिला की ख्याति प्रमुख शिक्षा–केन्द्र के रूप में दुर–दुर व्याप्त हो गयी। जिसका श्रेय वहाँ के आचार्य को जाता है। विशामुख आचार्यो की ऐसी प्रसिद्धि थी दूर–दूर के जिज्ञासु अपने घर परिवार को छोड़कर अपने प्राणों की चिन्ता न कर तक्षशिला पहुंचने लगे। 'जातकों' में उल्लेख है कि उस समय भारत वर्ष के क्षत्रिय एवं ब्राह्मण कुमार शिल्प सिखने के लिए तक्षशिला के आचार्यो के पास जाते थे।

वाराणसी, राजगृह, मिथिला, उज्जैनी आदि सूदुर नगरों से विद्यार्थीगण तक्षशिला पहुँचते थे। 'बौद्धपिटको' में जिस प्रकार तक्षशिला का उल्लेख मिलता है उससे प्रतीत होता है कि अपने समय में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त विद्या केन्द्र था। जातकों में उदाहरण मिलता है कि आचार्य तक्षशिला में दिशामुख आचार्य पाँच–पाँच सौ विद्यार्थी को पढ़ाया करते थे। तक्षशिला में यह आवश्यक नहीं था कि सभी विद्यार्थी गुरूकुल में ही वास करें।

तक्षशिला मुख्यतः उच्च शिक्षा का केन्द्र था, जहाँ अध्ययन के लिए जाने वाले विद्यार्थियों की आयु लगभग 16 वर्ष बतलायी गयी है। विद्यार्थियों में ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की अधिक संख्या थी. जातक कथा में उल्लेख मिलता है, कि 103 राजकुमार एक आचार्य से धर्नुवेद की शिक्षा ग्रहण करते थे। तक्षशिला के आचार्यो के बारे में पता चला है कि उन्होंने राजकुमारों एवं ब्राह्मणों तथा श्रेष्ठ पुत्रों के साथ–साथ दर्जी और मछली मारने वालों को भी अपने मुखार्विन्द से शिक्षा दान दिया।

नालन्दा विश्वविद्यालय

युआन च्वांग विद्वान महायनी 'भिक्षु' था। भारत आने पर उसने विविध विश्वविद्यालयों में बौद्ध और ब्राह्मण दर्शनों का अध्ययन किया, अतः उसने मूल रूप से दो संस्थाओं का उल्लेख किया है, (1) पूर्व में नालन्दा का (22) पश्चिम में वल्लभी का। वल्लभी हीनयान विद्यालय था। इसलिए उसके तरफ उतना ध्यान नहीं दिया, परन्तु नालन्दा का उसने पुरजोर व्याख्यान किया है। नालन्दा युआन च्वांग ने संस्था प्रमुख आचार्य शीलभद्र से योगदर्शन का अध्ययन किया था। नालन्दा विश्वविद्यालय में अध्ययन की अनेक शालाएँ थी, व्याख्यानों के लिए प्रवेश और उपस्थिति के लिए नियम थे। नियमों की अवहेलना का पूर्ण दण्ड–विधान था। युवान च्वांग के अनुसार 1500, अध्यापक एवं 10,000 दस हजार विद्यार्थियों की संख्या को दर्शाता है। इत्सिंग के समय संख्या घटकर लगभग 3000 तीन हजार हो गयी थी।

नालन्दा विश्वविद्यालय में सभी भिक्षु एवं जनसाधारण महायान की शिक्षा पाते थे। 18 निकायों के ग्रंथ पढ़े जाते थे, जिनमें वेद–वेदांग, हेतु–विद्या, शब्द–विद्या, चिकित्सालय, अथर्ववेद, या मंत्र विद्या, सांख्ययोग आदि विद्याएँ थी।

यशोमित्र की टीका, सफुटार्था से स्पष्ट होता है कि उस समय व्याकरण ग्रंथ पढ़े जाते थे। जैसे– पाणिनिसूत्र, धातुपाठ, गणपाठ, काशिकावृति चूर्णि भतृहरि का शास्त्र वाक्यपदीय, और भागवृति के लिए विश्व विख्यात नालन्दा विश्वविद्यालय अपनी विद्याअध्ययन के केन्द्रों में आज प्रकाशमान दीप्तीमान प्रतीत हो रही है।

पुस्तकालय

तिब्बती स्त्रोतों से पता चलता है कि नालन्दा के ग्रन्थालयों में हस्तलिखित ग्रंथों का विशालतम संख्या थी। लामा तारानाथ और सत्रहवीं, अठारहवीं शती के अन्य तिब्बती लेखक, जिन्होंने बौद्ध धर्म का इतिहास लिखते हैं कि विश्वविद्यालय के प्रांगण का बहुत बड़ा वृति इन ग्रन्थालयों के लिए पृथक रखा गया था। और उस पर विशाल अनेक तल वाले भवन थे। उनमें से तीन के सुन्दर नाम थे, (1) रत्नोदधि, रत्नसागर, रत्नरंग। इनमें पहला ग्रंथालय नौ तल का था।

निष्कर्ष

छठी शती में फाहियान और युयान च्वांग के काल के बीच में संभवतः विक्रमशिला विश्वविद्यालय में बढ़ती हुई कीर्ति के सामने यह विश्वविद्यालय कुछ फीकी पड़ गयी थी। फिर भी तीन शताब्दियों तक नालन्दा का नाम चमकता रहा। 1197 में बिहार पर जो मुस्लिम आक्रमण हुआ उसका बुरा प्रभाव पड़ा और बख्तियार खिलजी के द्वारा नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों में आग लगा दिए जाने के बाद वर्षो तक जलता रहा, जो पुस्तकालय की विशालता का द्योतक है। इसलिए कहा जा सकता है कि बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था एक उत्कृष्ठ शिक्षा व्यवस्था था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- द्र0– विनयपिटक, महावग, वस्सूपनायिका खण्डधक।
- जातक, 3, पृ0 158
- जातक, 1, पृ0 272, 285, 409
- जातक, 3 पृ0 238
- जातक, पृ0 316
- जातक, 4 पृ0 392
- जातक, 4 पृ0 115
- जातक, 4 पृ0 96
- अल्तेकर, अ0 सं0– प्रा0 आ0 शिक्षण पद्धति परिछेद– 5
- जातक, 1 पृ0 217–218
- जातक, 5, पृ0 457
- मुर्खजी राधा कुमुद– एनसिएन्ट इन्डियन एजुकेशन पृ0– 482
- इतसिंग बौद्ध धर्म के वृतान्त, अध्याय– 34
- युवान च्वांग।
- तबतक–ए–नासिरी, पृ0 552

♦❐♦